व्यावहारिक ज्ञान तथा आम समझ से वैज्ञानिक प्रयोग

गीता दुरईराजन

विज्ञान एक ऐसा विषय है जो करके सीखने की माँग करता है और इसलिए प्रायोगिक विधि विज्ञान का एक अहम पहलू है। परन्तु अक्सर प्रयोगों के दौरान शुद्धता व एकदम सही परिणाम की अपेक्षाएँ और यंत्रों के इस्तेमाल की पेचीदगियाँ बच्चों में एक तरह का डर और फिर अरुचि पैदा कर देती हैं। एकदम सही जवाब हासिल करने की दौड़ में प्रयोग करके देखने की प्रवृत्ति की बलि चढ़ जाती है। परन्तु इस लेख में करके देखने का एक दूसरा ही चरम प्रस्तुत किया गया है! रसायन प्रयोग के दौरान छूकर, सूँघकर या चखकर देखना अवैज्ञानिक नहीं है पर ज़रूरत होगी शिक्षक की सलाह की क्योंकि कई बार यह खतरनाक भी साबित हो सकता है।

जैसे ही मुझे पता चला कि इस वर्ष का विशेष अंक रसायन विज्ञान पर है, मेरे मन में विचार आयाः अरे! मैं तो विज्ञान की अध्यापिका नहीं हूँ, मैंने तो भौतिक, रसायन तथा जीव विज्ञान की पढ़ाई तीस वर्ष से भी ज़्यादा पहले अपनी प्री-युनिवर्सिटी के बाद ही छोड़ दी थी, मुझे इस क्षेत्र के बारे में क्या जानकारी है? परन्तु फिर, अपने स्कूल के दिनों की कुछ यादें मेरे दिमाग में चलचित्र की भाँति घूम गईं और मैंने उन्हें आपके साथ साझा करने और उन पर विचार करने की सोची।

प्रायोगिक परीक्षा के हश्र

रसायन (तथा भौतिक) विज्ञान के प्रयोग हमने नौवीं कक्षा से करने शुरू कर दिए थे। अन्तिम परीक्षा के लिए, हमें एक रहस्यमयी पैकेट पकड़ा दिया जाता जिसमें कुछ चूरा होता था और

हमें कुछ परीक्षण करके उस चूरे (लवण) को पहचानने के लिए कहा जाता था। इन परीक्षणों को हर हफ्ते कक्षा में दोहराने के बावजूद, अन्तिम परीक्षा के समय मैं बहुत घबराई होती थी, क्योंकि अक्सर उसे पहचानने में मैं गलती कर जाती। शायद तनाव के कारण वे परीक्षण सही ढंग से नहीं कर पाती थी। आज मुझे यह समझ है कि यदि किसी रासायनिक क्रिया की जिस प्रकार होने की उम्मीद हो और वह वैसी न हो रही हो तो, उसका कारण या तो उसे सही तापमान तक गरम न करना होता है या फिर किसी सामग्री का सही समय पर न डालना। यह भी हो सकता है कि उस समय कुछ और परीक्षण करने की भी आवश्यकता रही हो जो कि मैं समय की कमी के कारण न कर पाई क्योंकि प्रायोगिक परीक्षाएँ निश्चित समय के अन्दर खत्म करनी होती हैं और आत्मविश्वास की कमी वाले विद्यार्थी अपना काम जल्दी तथा तेज़ी से शुरू नहीं कर पाते।

छूना, सूँघना और...

मुझे याद है कि एक दिन मैंने अपने इस डर के बारे में अपनी बड़ी बहन, जिन्होंने फार्मेसी में स्नातकोत्तर की परीक्षा पास की थी, को बताया। उन्होंने बहुत सरल-सी सलाह दी जो किसी भी रसायन विज्ञान की पुस्तक में नहीं मिलेगी। उन्होंने कहा, "देखो, तुम्हें कभी भी कोई ऐसा लवण नहीं देगा जिसमें संखिया (आरसेनिक) जैसा कुछ मिला हो या फिर उसमें कोई घातक रसायन शामिल हो। इसलिए जब भी तुम्हें कोई लवण दिया जाए तो पहले उसे सूंघो, फिर छूकर देखो तथा उसकी बनावट व रचना को ध्यान में रख लो।" और फिर, उन्होंने जोड़ा (जिसका प्रभाव मुझ पर सबसे अधिक पड़ा), "कुछ नहीं होगा; लवण को अपनी एक उँगुली की नोक से छूकर देखो तथा चखो; परन्तु केवल अपनी उँगुली का सिरा ही इस्तेमाल करना, ठीक है। इन परीक्षणों के साथ तुम अपने लवण

का अन्दाज़ा लगा सकोगी और अगर किस्मत वाली हुई तो सही पहचान भी कर सकोगी। एक बार यह सब करने के बाद कुछ मानक परीक्षण करो तथा अपने परिणाम की पुष्टि कर लो।"

अगली बार जब प्रायोगिक परीक्षाओं में वह रहस्यपूर्ण पैकेट मुझे दिया गया तो मैंने काँपते हाथों से वही किया जो मेरी दीदी ने मुझे सिखाया था तथा हर हफ्ते जिसे मैं दोहराती आई थी। मैंने अपने इस तरीके की भनक न तो अपने साथियों और न ही अपनी अध्यापिका को लगने दी क्योंकि मन के किसी कोने में मुझे डर था कि ऐसे 'अवैज्ञानिक' तरीके के लिए मुझे अवश्य सज़ा मिलेगी।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि मैं अपने लवण की सही पहचान कर पाने में पूरी तरह सफल रही। यह सफलता बन्सेन बर्नर, पिपेट व टेस्ट ट्यूब से नहीं मिली बल्कि छूने, चखने तथा सूँघने आदि से मिली!

क्या सही - क्या गलत?

अब बड़ी होने पर मैं अपने आप से प्रश्न पूछती हूँ कि क्या मेरी बहन गलत थी? क्या उसने मुझे प्रायोगिक परीक्षा में चालाकी भरे तरीके इस्तेमाल करना सिखाया? क्या इसे बेईमानी कहेंगे?

मैं ऐसा नहीं सोचती। हम सब इन्सान अपनी आम रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में विज्ञान अपनाते हैं; जब हम छोटे बच्चे होते हैं तब हम छूकर, सूँघकर, चखकर, सुनकर, देखकर अपने आसपास की चीज़ों की पहचान करते हैं। परन्तु जहाँ व्यवस्थित, योजनाबद्ध तरीके से पढ़ाने की बात आती है तो इन पाँचों इन्द्रियों के प्रयोग का तरीका मानो गायब हो जाता है।

खोज के आनन्द की जगह नीरस, निष्क्रिय आदतों के रेगिस्तान ने जन्म ले लिया है; हम रसायनों को मापते, गर्म करते तथा जलाते हैं परन्तु उन्हें छूते, महसूस करते तथा सूँघते नहीं जिससे उनके गुणों की खोज कर खुद समझ सकें।

***

अपने बचपन की एक और याद मैं आपके साथ बाँटना चाहूँगी जो भौतिक विज्ञान के क्षेत्र से लैंस एवं उसके केन्द्र-बिन्दु से जुड़ी है। हम सभी को पता है कि नौवीं कक्षा से शुरू किए जाने वाले उन प्रयोगों को कैसे किया जाता है – दर्पण, प्रकाश तथा लैंस का प्रयोग करके नतीजे तक कैसे पहुँचा जाता है।

एक समय के बाद (उस प्रणाली को समझने के बाद) मुझे दर्पण, लैंस तथा लैम्प के बीच की दूरी 'खोजनी' नहीं पड़ती थी। मैं हिसाब-किताब का जोड़-तोड़ सही करती और फिर सभी चीज़ों को उन स्थानों पर रख देती जहाँ उन्हें होना चाहिए था। लो! और मेरा सफल प्रयोग लिख लिया जाता! कोई खोज नहीं, केवल नीरस आदत से।

व्यवहारिक प्रयोग

ऐसे प्रयोग शुरू करने से बहुत पहले, शायद तब मैं पाँचवीं या छठी कक्षा में रही होंगी, गर्मियों के मौसम में मेरे पिताजी बड़ा हैंडलैंस लेकर आए। जितनी बड़ी आज मेरी हथेली है, उससे भी बड़ा था वो। यह हैंडलैंस मेरी माँ के लिए था जिन्हें कढ़ाई की किताबों में से बारीक टाँके देखने होते थे। मुझे हाल ही में पढ़ाया गया था कि किस प्रकार उत्तल लैंस से प्रकाश की किरण को एक बिन्दु पर केन्द्रित करके आग जलाई जा सकती है। और जल्दी ही मुझे इसे आज़माने का एक सुनहरा मौका मिल गया। दोपहर को जब घर के सभी लोग सो रहे होते, मैं धूप में हैंडलैंस लेकर जाती और सूर्य के प्रकाश को किसी पत्ती के एक बिन्दु पर केन्द्रित करने की कोशिश करती तथा उसके आग पकड़ने का इन्तज़ार करती। मैंने क्लोरोफिल (पौधों में पाया जाने वाला एक हरा पदार्थ) को भी जलाना सीख लिया ताकि केवल जली हुई शिराएँ ही नज़र आएँ। फिर मैंने पत्तियों पर डिज़ाइन बनाना भी सीख लिया। मैं पत्ती को एक हद तक गर्म करती जिससे वह आग न पकड़े परन्तु गर्मी से जल जाए - इस तरह मैं विभिन्न आकृतियाँ बनाती थी।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपको अब तक अन्दाज़ा लग ही गया होगा कि मेरे इन वैज्ञानिक प्रयोगों का क्या हश्र हुआ होगा। एक दिन मैं पकड़ी गई। मैंने पत्ती पर कुछ ज़्यादा देर तक सूर्य का प्रकाश केन्द्रित कर दिया और उसमें आग लग गई। किसी बड़े ने यह देखा और वे दौड़ते बाहर आए। मुझे आज भी वह डाँट अच्छी तरह याद है (जो तमिल में थी): "तुम क्या कर रही हो? तुम्हें आग लग जाती! तुम घर जला देती! अन्दर आ जाओ! अब कभी इस हैंडलैंस को हाथ न

लगाना...।" मैंने समझाना चाहा कि मुझे लैंस तथा उसके केन्द्र-बिन्दु के बारे में पढ़ाया जा चुका है तथा मैं इस सम्बन्ध में व्यावहारिक ज्ञान हासिल करने की कोशिश कर रही हूँ, परन्तु किसी ने मेरी एक न सुनी।

मेरी विज्ञान सम्बन्धी खोजें वहीं समाप्त हो गईं, जब तक कि कुछ सालों बाद मेरी बहन ने लवण को छूने तथा सूँघकर पहचानने की सलाह दी।

करके देखें: छोटी उमर का विज्ञान?

मैंने कॉलेज के शुरुआती दिनों के बाद रसायन विज्ञान की पढ़ाई छोड़ दी थी, परन्तु आज भी मैं अपने आपको विज्ञान की विद्यार्थी ही मानती हूँ जो छोटे बच्चों के साथ रेत में हाथ मारकर छोटी-छोटी चीज़ों को जानने की कोशिश करती है कि वे कैसी लगती हैं। 'ये क्या है' या 'क्यों' का उत्तर मैं सदा 'आओ, पता लगाते हैं' के रूप में देती हूँ। छोटे बच्चे हर चीज़ अपने मुँह में शायद इसलिए डालते हैं ताकि वे उन्हें अच्छे से जान सकें। यह 'जानने' या 'खोजने' का तरीका वे विज्ञान की पढ़ाई शुरू करने के साथ ही छोड़ देते हैं; अगर यह शुरुआती सालों में रहता भी है, तो भी विज्ञान की संजीदा पढ़ाई के साथ ही खत्म हो जाता है। यह एक खेद का विषय है क्योंकि यदि हम चाहते हैं कि आविष्कार तथा खोज लगातार होती रहें तो हमें इस तरीके को प्रोत्साहित करना ही होगा। प्रयोगशाला में सिखाया जाने वाला अनुशासन और पद्धति भी अनिवार्य हैं, परन्तु केवल अच्छी आदतों से ही वैज्ञानिक पैदा नहीं होते!

गीता दुरईराजन: परीक्षण तथा मूल्यांकन विभाग, ई.एफ.एल. युनिवर्सिटी, हैदराबाद में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: निरूपा भटनागर: सामाजिक विज्ञान की अध्यापिका हैं। मोहाली, पंजाब में रहती हैं।

सभी चित्र: निशित मेहता: विज़ुअल आर्ट्स में स्नातक। वर्तमान में स्वतंत्र रूप से चित्रकारी और लेखन कार्य कर रहे हैं।

'टीचर प्लस' पत्रिका के अंक मई-जून 2013 के 'पर्सनल इक्वेशन्स कैटेगरी' कॉलम से साभार।